International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-07-2021, Accepted: 30-07-2021, Published: 16-08-2021
Volume 7; Issue 4; 2021; Page No. 75-78

महादेवी के विवेचनात्मक गद्य का वर्तमान मूल्य एवं तत्व

डा. भावना पाण्डेय
हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
महादेवी जी के द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिये गये भाशणों में से आज अधिकांश अनुपलब्ध हैं। केवल कुछ ही अंशतः उपलब्ध हो पाये हैं। जिनमें से एक विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के दीक्षांत समारोह के अवसर पर दिया गया भाशण है, दूसरा महारानी लालकुँवरि महाविद्यालय बलरामपुर के दीक्षांत के अवसर पर दिया गया था एवं तृतीय उत्तरप्रदेश विधानपरिशद के उनके सदस्य मनोनीत किये जाने के दौरान दिया गया था। इन तीनों ही भाशणों को क्रमशः 'शिक्षा का उद्देश्य', 'मातृभूमि देवो भव' और 'साहित्य, संस्कृति और शासन' के नाम से संकलित हैं। ये निबंध महादेवी जी के 'संभाशण' नामक ग्रंथ में संकलित हैं। इन संभाशणों में महादेवी जी के महत्वपूर्ण साहित्यिक, सामाजिक और प्रगतिशील विचार संग्रहीत हैं। एक उदाहरण दृश्टव्य है जिसमें वे लिखती हैं कि ''यह लिखना साहित्यकार का अपमान करता है कि वह जीवन संघर्श में साथ नहीं दे सकता। जो जीवन को आदर्श देते हैं, अनुभूति देते हैं ये तो जीवन के निरंतर साथी हैं ही। वे जीवन के मूल्यों की स्थापना भी करते हैं और उन मूल्यों की रक्षा के लिए बाजी लगाने की प्रेरणा भी देते हैं।''

मूलशब्दः प्रगतिशील विचार, साहित्य, संस्कृति और शासन, विधानपरिशद, यात्रावृत्तांत, सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिंतन, एकता और विश्वबंधुत्व।

प्रस्तावना
भारतीय और पाश्चात्य साहित्य के साथ–साथ दोनों के साहित्यकारों के समन्वय को भी महादेवी जी सकारात्मक रूप में ग्रहण करती हैं इसी संदर्भ में वे लिखती हैं कि ''साहित्य की भूमि पर कालिदास और तुलसीदास जितने हमारे हैं उतने ही सारे विश्व के हैं और शेक्सपीयर, गोर्की, टालस्टॉय आदि जितने अपने देशों के लिए हैं उतने ही हमारे हैं। हम धरती पर दीवारें खड़ी करके उसे बाँट सकते हैं, पर उन दीवारों की ऊँचाई से आकाश खंड–खंड में नहीं बँट सकता है। हम तौल कर बादलों का बँटवारा नहीं कर सकते, नाप कर किरणों को विभाजित नहीं कर सकते ओर गिनकर तारों को नहीं ले सकते। वे सबके होने के लिए प्रत्येक के हैं।'' वे मानती हैं कि साहित्य की एकता के लिए समूचे विश्व के साहित्य को एक होकर चलना होगा। इस एकता के साथ वे शिक्षा में साहित्य और संस्कृति के समावेश को भी बहुत महत्वपूर्ण मानती हैं ताकि नवीन पीढ़ी मानव मात्र के साथ एकता और विश्वबंधुत्व की भावना से प्रेरित होकर आगे आए। महादेवी जी के भाशणों के पश्चात् उनके विवेचनात्मक गद्य साहित्य में उनके वे निबंध आते हैं जो उन्होंने विभिन्न विशयों पर लिखते हैं। उपलब्ध निबंधों का विश्लेशण प्रस्तुत है–

क्षणदा (1956)
इस संग्रह का प्रथम निबंध 'करुणा का संदेशवाहक' ललित–निबंध तथा 'स्वर्ग का एक कोना' और 'सुई दो रानी डोरा दो रानी' भी यात्रावृत्तांत होने के कारण इस शोध प्रबंध के 'रचनात्मक गद्य' भाग में सम्मिलित किये गये हैं। शेश विवेचनात्मक गद्य के सभी निबंधों को उनके यथा स्थान प्रस्तुत किया जा रहा है।

संस्कृति का प्रश्न
संस्कृति का तात्विक विवेचन करने के साथ उसकी उत्पत्ति, विस्तार, सनातनता आदि प्रश्नों के उत्तर के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के साथ हमारी संस्कृति के संबंध आदि को लेकर महादेवी जी का यह निबंध उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिंतन, मनन और गहन अध्ययन का परिचायक है। वे संस्कृति का चिरप्रवाहमान सरिता की संज्ञा देती हैं। संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ही वे भारतीय संस्कृति की परिस्थितियों की भी बात करती हैं। वे लिखती हैं कि ''भारतीय संस्कृति का प्रश्न अन्य संस्कृतियों से कुछ भिन्न है, वह अतीत की वैभव–कथा ही नहीं, वर्तमान की करुण गाथा भी है। उसकी विविधता प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति को कुछ उलझन में डाल देती है। संस्कृति विकास के विविध रूपों की समन्वयात्मक समश्टि है और भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है। इस प्रकार इसके मूल तत्व समझने के लिए हमें अत्यधिक उदार, निष्पक्ष और व्यापक दृश्टिकोण की आवश्यकता रहती है।''
महादेवी जी बताती हैं कि संस्कृति भौगोलिक सीमाओं से परे होती हैं और किसी एक विचाराधारा का उसमें प्राधान्य नहीं होता किंतु कुछ विचारधाराएँ बहुत हद तक संस्कृति को प्रभावित करने में सक्षम भी होती हैं वे बौद्ध–दर्शन और उनकी विचारधारा का सनातन संस्कृति पर प्रभाव का उल्लेख करती हैं और बताती हैं कि उसने न केवल भारतीय संस्कृति में पट–परिवर्तन कर दिया बल्कि अन्य देशों की संस्कृति को भी विकास की एक नयी दिशा दी। वे कहती हैं कि वैदिक संस्कृति अपनी यथार्थता में भी आदर्श के निकट थी और बौद्ध संस्कृति अपनी बौद्धिकता में भी अधिक यथार्थोन्मुखी रही है। एक प्रवृत्ति प्रधान और दूसरी अपरिग्रही रही हैं परंतु दोनों ही विकास की ओर गतिशील हैं।

कला और हमारा चित्रमय साहित्य
इस निबंध में कला का महत्व बताते हुए चित्रकला की स्थिति–गति का आकलन परिकलन किया गया है। विभिन्न दृश्टिकोणों की व्याख्या की गई है। पत्र–पत्रिकाओं में स्त्री के कलात्मक प्रस्तुतिकरण की विवेचना की गई है। किसी व्यक्ति या व्यक्तित्व पूर्णता का रेखांकित किसी एक आयाम को लेकर निर्धारित नहीं किया जा सकता। उसके लिए सर्वप्रथम एक विशेश दृश्टि चाहिए फिर उन समस्त आयामों से परिचित होना होगा जो प्रत्यक्ष जगत् से लुप्त प्राय दिखाई देते हैं। उक्त गंभीर

विचारों के माध्यम से कला की गंभीरता और साहित्य की सजगता को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाली महादेवी जी का यह निबंध उनके कुछ चुनिंदा निबंधों में गिना जा सकता हैं। महादेवी जी ने इस निबंध में मनुश्य जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को उसी तरह सामने लाने का प्रयास किया है जिस तरह एक कलाकार जीवन की कुरूपता तथा सौंदर्य, दुर्बलता तथा शक्ति, पूर्णता तथा अपूर्णता आदि की सामंजस्यपूर्ण और रागात्मक अभिव्यक्ति को समश्टि तक पहुँचाकर करता है।

कलाकार हमारे जीवन में एक विशेश स्थान रखता है और हमारी पूर्णता की कल्पना को एक साकार रूप देता हुआ हमारी अभिव्यक्ति का व्यक्त रूप सामने लेकर आता है जिससे हम अपने मन के सौंदर्य को अपने सामने देख भी पाते हैं और उससे अभिभूत भी हो पाते हैं। महादेवी जी कलाकार के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखती हैं कि ''कलाकार यदि सच्चे अर्थों में कलाकार हो तो, वह कल्पना को सौंदर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और उससे जीवन–संगीत की सुरीली लय की सृश्टि कर लेगा। उसके, कला में साकार आदर्श तलवार की झंझनाहट में नहीं टूटते, बाँसुरी की मादक तान में नहीं बह जाते, मनुश्य की दुर्बलता पर हताश नहीं होते, कुरूपता पर कुंठित नहीं होते और क्षणिक् सौंदर्य पर चमत्कृत होना भी नहीं जानते। सभी सुगम मार्गों में, सारे सुख–दुःखों में, सारी फूल शूलमयी परिस्थितियों में कला जीवन की संगिनी रही है और भविश्य में भी रहेगी।''

अभिनय कला

नाटकों के महत्वपूर्ण तत्वों के परिप्रेक्ष्य में अभिनय की महत्ता बताता महादेवी जी का यह गद्य उनकी व्यापक कला दृश्टि की ओर संकेत करता है। अभिनयशील चरित्रों के विशिश्ट होने तथा उनकी अनुकरणीयता संबंधी अनेकानेक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए महादेवी जी ने सुखांत तथा दुःखांत दोनों प्रकार के नाटकों के अभिनेताओं की अभिनय कला के महत्वपूर्ण तत्वों पर प्रकाश डाला है। वे अभिनयकला के महत्वपूर्ण उपादान करुणा के संबंध में कहती हैं कि ''अभिनय में करुणा की प्रधानता दर्शकों के मनोभावों द्वारा आँकी जानी चाहिए, कथा के सुख या दुःखमय अंत से नहीं। अभिनय यदि हमारे सुख–दुःख के संघर्श, जीवन की जटिल समस्याओं और मानव हृदय के आजीवन न मिटने वाले अंतर्द्वंद्व की दुरूहता को यथार्थ रूप से चित्रित कर सके तो वह सकरुण है, यदि वह सत्य, शिव और सुंदर की अमरता का ज्ञान करा सके तो वह आनंदमय है। उस युग की अभिनय–कला का यही मूलमंत्र था और बहुत समय तक रहा।''

महादेवी जी इस बात पर आश्चर्य प्रकट करती हैं कि हिन्दी नाटकों को अविर्भावकाल से लेकर आज तक किसी रंगमंच की आवश्यकता नहीं पड़ी। शायद यही कारण है कि हिन्दी का नाट्य साहित्य अभिनय से अधिक अध्ययन की वस्तु है जिसमें अभिनय, अभिनेता तथा दर्शकों का उतना ध्यान नहीं रखा जाता जितना कि अध्ययनशील पाठकों का रखा जाता है। कालांतर में व्यवसायिक थियेटरों के माध्यम से पारसी रंगमंच ने हमारे नाटकों की इस महत्वपूर्ण वस्तु को अपने रंगमंच के आकर्शण से प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया। यह सायास नहीं बल्कि अनायास ही हो गया क्योंकि उन्हें हमारी संस्कृति और कला के सामाजिक लक्ष्यों का न तो ज्ञान था और न ही उन्हें इसकी आवश्यकता पड़ी। इसीलिए इन रंगमंचों में अधिकांश के माध्यम से सस्ती उत्तेजना बढ़ाने वाले गीत, कामुकता को प्रश्रय देने वाले नृत्य और विकृत प्रभाव डालने वाले चरित्रों का प्राधान्य होता चला गया। महादेवी जी कहती हैं कि ''इन रंगमंचों ने वह दिया जिसे रासधारी, राधाकृश्ण के बहाने देने का निश्फल प्रयास करते थे और इन्होंने वह छीन लिया जिसे रामलीला वाले, सफलतापूर्वक देते थे। इनके पास साधन थे। चमत्कृत करे देने वाले दृश्य, चकाचौंध कर देने वाला प्रकाश, कौतूहल उत्पन्न कर देने वाली वेशभूशा और असंयत अभिनेता–अभिनेत्रियों के दल ने विकृति को भी प्रकृति के रूप में दिखाया। परंतु यदि यह व्यवसायी न होते, तो अभिनय–कला की ओर हमारा ध्यान न जाता।''

हमारा देश और राश्ट्रभाशा

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारत देश के बाह्य और अभ्यंतर सौदर्य की गहन अनुभूति करने वाली महादेवी जी अपने इस निबंध में भारत और उसकी हिन्दी को एक नये दृश्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं। वे कहती हैं कि ''हमारा देश अपने प्राकृतिक वैभव में जितना समृद्ध है, अपनी आंतरिक विभूतियों में उससे कम गुरु नहीं। उसकी मूलगत समानता, लक्ष्यगत एकता और इन दोनों को जोड़ने वाली प्रदेशगत विविधता की तुलना के लिए ऐसी नदी को खोजना होगा, जो हिमालय से निकलकर एक समुद्र में मिलने के पहले अनेक धाराओं में बिखर बँटकर प्रवाहित होती है। जैसे विभिन्न दूर पास के अंगों से रक्त का एक हृदय में आना और एक से पुनः अनेक में लौट जाना ही शरीर की संचालक शक्ति है, इसी प्रकार भारतीय संस्कृति बार–बार एक केन्द्र बिंदु का छू कर दूर प्रसार की क्षमता पाती रही है।''

महादेवी जी समूचे भारत से निकलने वाली ऐसी सरिता उसकी उस भाशा को मानती हैं जो समूचे भारतीयों के हृदय में संचालक शक्ति की तरह अनिवार्य बनी हुई है और वह हिन्दी है। हिन्दी ही वह सरिता है जो भारत की सभी व्यवहारों का माध्यम होने के साथ–साथ समस्त समूहों के जीवन, सुख–दुःख, आकर्शण–विकर्शण, स्वप्न–आकांक्षा, यथार्थ–आदर्श, जय–पराजय आदि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रही है। वे कहती हैं कि संस्कृति या समकृति कोई निर्मित वस्तु नहीं है बल्कि विकास का अनवरत् क्रम है और भाशा संस्कृति का लेखा–जोखा रखती है। भारत एक स्वतंत्र राश्ट्र है और उसके लिए राश्ट्रभाशा की आवश्यकता पर गहन विचार व्यक्त करते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि ''राश्ट्रभाशा की अनिवार्य विशेशताओं में दो हमारे पास हैं, भौगोलिक अखंडता और सांस्कृतिक एकता; परंतु अब तक हम उस वाणी को प्राप्त नहीं कर सके हैं, जिसमें एक स्वतंत्र राश्ट्र दूसरे स्वतंत्र राश्ट्रों के निकट अपना परिचय देता है।''

साहित्य और साहित्यकार

पाश्चात्य जगत् में अरस्तू ने जिस प्रकार प्रकृति को पुनः सृजन कहा है उसी प्रकार महादेवी जी भी साहित्य के संदर्भ में इसी तथ्य से निबंध का प्रारंभ करते हुए लिखती हैं कि ''साहित्य मूलतः निर्माण है, व्यक्ति के लिए भी और समश्टि के लिए भी, अतः उसे सृजन के किसी विराट् ऋत की परिधि मे ंचलने वाले एक जीवन–ऋत की संज्ञा दी जा सकती है। सृजन के अन्य महान् ऋतों के समान ही वह वरदान और अभिशाप का भागी है। वरदान है कि मानव जीवन की विकास परंपरा को खंड–खंड बिना किये उसे खंडित नहीं किया जा सकता। अभिशाप है कि उसकी स्थिति में दूसरों की आस्था ही उसकी उपेक्षा का कारण बन जाती है।''

युग के सापेक्ष साहित्य और साहित्यकार के महत्व को रेखांकित करते हुए महादेवी जी प्रकृति के अखण्ड नियमों के समान साहित्य सृजन के प्रति लोक के अनिवार्य रुझान की व्याख्या करती हैं। साहित्य सृजन की विशेश अवस्थाओं को बताते हुए महादेवी सृजन कर्म के लिए स्वतंत्र प्रेरणा और मुक्त क्षितिज की अनिवार्य आवश्यकता बताती हैं। वे साहित्यकार के सृजन–कर्म के लिए प्रेरित होने की विभिन्न स्थितियों पर विचार करते हुए लिखती हैं ''साहित्यकार क्यों लिखता है, वह अपनी तृप्ति के लिए लिखता है अथवा समश्टि के संतोश के लिए। साहित्य–सृजन साहित्यकार का स्वेच्छा से किया आत्मदान है

अथवा समाज की माँग की पूर्ति मात्र। साहित्य–सृजन अपने सृश्टा के लिए जीवन है या जीवनयापन का साधन मात्र। साहित्य युग–सापेक्ष है या निरपेक्ष। साहित्य के प्रेय और श्रेय की परीक्षा किसे दृश्टि में रखकर की जावे, आदि–आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिनके समाधान जीवन की समग्रता में ही प्राप्त हो सकते हैं, उसे अंशतः देखने में नहीं। प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में साहित्य की उत्कृश्टता की कसौटी उसकी व्यापकता ही मानी गई है और यह व्यापकता स्वयं व्यक्तिगत रुचि का निशेध है।'' इस प्रकार महादेवी जी साहित्य को व्यक्तिगत रुचि न मानकर उसके युगान्तर प्रभाव को देखते हुए उसे समश्टिगत मानती हैं। साहित्य लेखन से स्वयं साहित्यकार भी जीवन–दृश्टि से समृद्ध होता जाता है यही कारण है कि साहित्य–सृश्टि का लक्ष्य स्वान्तः सुखाय होकर भी समश्टि के लिए होता है।

साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध(1962)–

साहित्यकार की आस्था

महादेवी जी मानती हैं कि आस्था साहित्यकार को स्पंदित करते हुए दीप्त जीवन प्रदान करती है। साहित्य और साहित्यकार दोनों से जुड़े अनेक गूढ़ रहस्यों पर इस निबंध में महादेवी जी ने विमर्श किया है। वे यह मानती हैं कि जिस प्रकार साहित्यकार अपने सृजन के क्षणों में अपने सृजन का जीवन जीता है उसी प्रकार एक पाठक भी उस रचना को पढ़ते समय उसी जीवन को जीता है इसीलिए साहित्य जीवन का सौंदर्य न होकर स्वयं जीवन ही है और इसी जीवन के प्रति साहित्यकार और पाठक दोनों की आस्था होना उस जीवन के आनंद के लिए बहुत जरूरी है। वे कहती हैं कि ''हमारे चिंतकों ने जीवन और जगत् की गतिमय और परिवर्तनशीलता को सँभालने वाले जिस महान् नियम को ऋत् की संज्ञा दी है, आस्था उसी की रागात्मक स्वीकृति है।''

काव्यकला

यह एक लंबा निबंध है जिसके पहले भाग में विभिन्न संदर्भों को लेकर कविता में पायी जाने वाली सत्य की निरपेक्ष सापेक्षिता की व्याख्या की गई है तथा दूसरे भाग में सामाजिक तथा राश्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विभिन्न युगों के काव्य के स्वरूपों की व्याख्या की गई है। साथ ही आज के वैज्ञानिक युगीन साहित्य की समस्याओं पर प्रकाश भी डाला गया है। महादेवी जी काव्य कला का परिचय देते हुए लिखती हैं कि मनुश्य का मस्तिश्क जीवन के निश्चित बिंदुओं को जोड़ने का कार्य कर लेता हैं किंतु इस क्रम में निर्मित परिधि में सजीवता के रंगों को भरने की क्षमता केवल हृदय में ही है और काव्यकला इन दोनों का संधिपत्र है। उनके अनुसार काव्यकला का सत्य जीवन की परिधि में सौंदर्य के माध्यम से व्यक्त अखण्ड सत्य है। वे कहती हैं कि ''काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क प्रणाली है और न सूक्ष्म बिंदु तक पहुँचाने वाली विशेश विचार–पद्धति। वह तो जीवन को, चेतना और अनुभूति के समस्त वैभव के साथ, स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।''

छायावाद

काव्यभाशा, राश्ट्रीयता, छंद विधान, शब्दयोजना आदि के परिवर्तन के साथ–साथ कथ्य एवं विशय परिवर्तन को लेकर आये छायावाद पर डॉ. मुकुटधर पाण्डेय की ही तरह मौलिक विचारों को महादेवी जी के इस निबंध में देखा जा सकता है। छायावादी काव्य को दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए महादेवी जी ने इस निबंध में नयी दृश्टि से देखने का प्रयास किया है। वे लिखती हैं कि ''छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव–भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौंदर्य–सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख–दुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य–सृश्टि उपस्थित कर दी जो, प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।'' वे मानती हैं कि छायावाद ने मानव हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये थे जो प्राचीन काल से बिंब और प्रतिबिंब के रूप में चला आ ही रहा था और जिसके कारण व्यक्ति को अपने दुःख में प्रकृति भी उदास दिखाई देती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी। छायावाद ने नये छंदबंधों में, सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ीबोली की सात्विक कठोरता नहीं दे सकता था। इसीलिए छायावादी कवि ने एक कारीगर की भाँति प्रत्येक शब्द करी ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृश्टि से नाप–तौल कर और काँट–छाँट कर और कुछ नया गढ़कर अपनी भावनाओं को कोमलतम कलेवर दे दिया।

गीतिकाव्य

यह महादेवी जी का सर्वाधिक प्रासंगिक निबंध है। इसमें महादेवी जी ने गीत की व्याख्या करते हुए उसे मनुश्य के भावों से जोड़ा है। वे लिखती हैं कि हिन्दी का अधिकांश प्राचीन साहित्य गेय होने के साथ–साथ मनुश्य हृदय के अत्यंत निकट भी है। निबंध के प्रारंभ में वे गीत से गीतिकाव्य को पृथक करती हुई गीतिकाव्य की रचना विधान पर प्रकाश डालती हैं फिर गीतिकाव्य के प्रमुख विशयों और उनके रचियताओं को भी अपनी सूक्ष्म दृश्टि की कसौटी पर कसती हैं। वे मानती हैं कि ''व्यक्तिप्रधान भावात्मक काव्य का वही अंश अधिक से अधिक अंतस्तल में समा जाने वाला, अनेक भूले सुख–दुःखों की स्मृतियों में प्रतिध्वनित हो उठने के उपयुक्त और जीवन के लिए कोमलतम स्पर्श के समान होगा, जिसमें कवि ने गतिमय आत्मानुभूत भावातिरेक की संयत रूप में व्यक्त कर उसे अमर कर दिया हो या जिसे व्यक्त करते समय वह अपनी साधना द्वारा किसी बीते क्षण की अनुभूति की पुनरावृत्ति करने में सफल हो सका हो। केवल संस्कारमात्र भावात्मक कविता के लिए सफल साधन नहीं हैं और न किसी बीती अनुभूति की उतनी ही तीव्र मानसिक पुनरावृत्ति ही सबके लिए सब अवस्थाओं में सुलभ मानी जा सकती है। हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीतप्रधान ही कहा जायेगा। हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृश्टिपात् करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता।''

यथार्थ और आदर्श

हिन्दी काव्य में आदर्श और यथार्थ के विशाल कैनवास पर एकता, अखण्डता, अध्यात्म और दर्शन आदि की खोज करते हुए वे मानती हैं कि प्रत्येक युग में यथार्थ और आदर्श दोनों एक–दूसरे के पूरक होते हैं और कलाएँ स्वप्न और सत्य के इस अंतर को पार कर उनकी मूलगत अन्योन्याश्रित स्थिति को पहचानती रही हैं और इसी के कारण जीवन की शाश्वत लय एक रूप ग्रहण करती आयी है।

यथार्थ के प्रति वैज्ञानिक दृश्टि के संबंध में महादेवी जी कहती हैं कि इस दृश्टि का आग्रह काव्य को लक्ष्यभ्रश्ट कर देगा क्योंकि काव्य आनंद स्वरूप हैं और आनंद के लिए उसकी परिधि में विज्ञान का स्थान नहीं। विज्ञान काव्य और उसकी अनुभूति को सीमित कर सकता है। ऐसा नहीं हैं कि सदैव आदर्श ही अपनाया जाए और यथार्थ का बहिश्कार किया जाए। जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें महादेवी जी दण्डनीय मानते हुए कहती हैं कि ''संसार में सबसे अधिक दण्डनीय वह व्यक्ति है, जिसने यथार्थ के कुत्सित पक्ष को एकत्र कर नरक का अविश्कार कर डाला, क्योंकि उस

चित्र ने मनुश्य की सारी बर्बरता को चुन–चुनकर ऐसे व्यौरेवार प्रदर्शित किया कि जीवन के कोने–कोने में नरक गढ़ा जाने लगा। इसके उपरांत, उसे यथार्थ के अकेले सुख–पक्ष को पुंजीभूत कर इस तरह सजाना पड़ा कि मनुश्य उसे खोजने के लिए जीवन को छिन्न–भिन्न करने लगा।''

निष्कर्ष

महादेवी जी के विवेचनात्मक गद्य के अंतर्गत उनके द्वारा विभिन्न संदर्भों पर दिये गये भाशणों के अतिरिक्त उनके कई विवेचनात्मक निबंध क्षणदा(1956), साहित्यकार की आस्था(1966), संकल्पिता(1969), चिंतन के क्षण(1986) आदि भी हैं। जिनमें से अधिकांश ओंकार शरद के संपादन में प्रकाशित सेतु प्रकाशन के 'महादेवी साहित्य' में भी संकलित हैं। जिसमें एक ओर विशयवस्तु की दृश्टि से महादेवी के विवेचनात्मक गद्य में संस्कृति, साहित्य तथा कला जैसे गंभीर अवधारणात्मक विशयों पर लिखे गये महत्वपूर्ण निबंध संगहीत हैं तो दूसरी ओर राश्ट्रीयता, समाज और व्यक्ति, शिक्षा, अध्यापक की भूमिका जैसे सामयिक प्रश्नों से जुड़े विशय भी मिल जाते हैं। उनके विवेचनात्मक गद्य की एक विशेशता तटस्थता है जिसमें उनके रचनात्मक गद्य की आत्मीयता, मानवीय मूल्य तथा संवेदनशीलता बिल्कुल समाप्त दिखाई देती है। उनके विवेचनात्मक गद्य में बौद्धिक चिंतन, विचारों की गंभीरता तथा तर्क का पैनापन प्रत्येक पंक्ति में मिल जाता है।

संदर्भ

1. संभाषण, महादेवी वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण– प्रथम 1973.
2. संस्कृति का प्रश्न, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
3. कसौटी पर, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
4. कला और हमारा साहितय, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
5. कला और हमारा चित्रमय साहितय, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
6. कुछ विचार, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
7. अभिनय कला, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
8. हमारा देश और राश्ट्रभाशा, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
9. काव्यकला, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
10. छायावाद, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
11. गीतिकाव्य, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
12. यथार्थ और आदर्श, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.